भगवान् कुन्थुनाथ के जन्मोत्सवसे हस्तिनापूर ऐसा मालूम होता था मानो इन्द्रपुरी ही स्वर्गसे उतरकर भूलोक पर आ गई हो । उधर उत्सव समाप्त कर देव लोग अपने अपने घर गये इधर बालक कुन्थुनाथ का राज-परिवामें बडे प्यारसे पालन होने लगा । इन्द्र प्रतिदिन स्वर्गसे उनकी मनभावती वस्तुएं भेजा करता था और अनेक देव विक्रियासे-तरह तरहके रुप बनाकर उन्हें प्रसन्न रखते थे । द्वितीया के चन्द्रमा की तरह क्रम-क्रम से बढते हुए भगवान कुन्थुनाथ यौवन अवस्था को प्राप्त हुए । उस समय अनेक शरीरकी शोभा बडी ही विचित्र हो गई थी । महाराज शूरसेन ने उनका कई योग्य कन्याओं के साथ विवाह और कुछ समय बाद उन्हें युवराज बना दिया । भगवान् शांतिनाथके मोक्ष जानेके बाद जब आधा पलय बीत गया था तब श्री कुन्थुनाथ तीर्थंकर हुए थे । उनकी आयु भी इसीमें शामिल है । उनका शरीर पैतालीस धनुष्य ऊंचा था शरीरकी कान्ति सुवर्णके समान पीली थी, और आयु पंचानवे हजार वर्ष की थी । जब उनकी आयुके तेईस हजार सात सौ पचास वर्ष बीत गये तब उन्हें राज्य प्राप्त हुआ था, और जब इतना ही समय राज्य करते हुए बीत गया था तब चक्ररत्न प्राप्त हुआ था, और जब इतना ही समय राज्य करते हुए बीत गया था तब चक्ररत्न प्राप्त हुआ था । चक्ररत्नके प्राप्त होते ही वे समस्त सेनाके साथ षाटखण्डो की विजयके लिये निकले और कुछ वर्षोंमें- समस्त भरतक्षेत्र में प्रवेश किया था तब बत्तीस हजार मुकुटवध्द राजाओंने उनका स्वागत किया था । देवों तथा राजाओंने मिलकर उनका पुन: राज्यभिषेक किया । इस तरह ते देवदुर्लभ भोगते हुए सुखसे समय बिताने लगे ।

एक दिन भगवान् कुन्थुनाथ अपने इष्ट परिवार के साथ किसी बनमें गये थे । वहांसे लौटते समय रास्तेमें उन्हें धान्य करते हुये एक मुनिराज दिखाई पडे । उन्होंने उसी समय अंगुली से इशारा कर अपने मंत्री से कहा - देखो कितनी शांत मुद्रा है । जब मन्त्रीने उनसे मुनिब्रत धारण करने का कारण पूछा तब उन्होंने कहा कि मुनिब्रत धारण करनेसे संसारके बढानेवाले समस्त कर्म नष्ट हो जाते है तब मोक्ष प्राप्त हो जाता है । इन्होंने जितने वर्ष सामान्य राजा रहकर राज्य किया था उतने ही वर्ष सम्राट होकर भी राज किया था । किसी एक दिन कारण पाकर उनका चित्त विषयोंसे उदास हो गया जिससे उन्होंने दीक्षा लेने का सृदृढ संकल्प कर लिया । उसी समय लौकान्तिक देवोंने आकर उनकी स्तुति की और उनके बिचारोंका समर्थन किया । लौकान्तिक देव अपना कार्य पूरा कर अपने स्थानों पर वापिस चले गये । किन्तु उनके बदले हर्षसे समुद्र की तरह उमडते हुए असंख्यात

देव हस्तिनापुर आ पहुंचे और दीक्षा-कल्याणक की विधि करने लगे । भगवान कुन्थुनाथ पुत्र को राज्य देकर देवनिर्मित बिजया नामकी पालकीकर सवार हो सहेतुक बनमें पहुंचे और वहां तीन दिनके उपवासकी प्रतिज्ञा लेकर वैशाख शुक्ला पडवाके दिन कृतिका नक्षत्र में शामके समय वस्त्राभूषण छोडकर दिगम्बर हो गये । उन्हें दीक्षा समय ही मन:पर्यय ज्ञान प्राप्त हो गया था । देव लोग उत्सव समाप्त कर अपने स्थानों अपने पर वापिस चले गये । चौथे दिन आहार लेनेकी इच्छासे उन्होंने हस्तिनापूर में प्रवेश किया । वहां धर्ममित्र ने उन्हे आहार देकर अचिन्त्य पुण्यका संचय किया । वे आहार लेकर बनमें लौट आये और कठिन तपस्याएं करने लगे । वे दीक्षा लेनेके बाद मौनसे ही रहते थे । इस तरह कठिन तपश्चर्या करते हुए उन्होंने सोलह वर्ष मौनसे व्यतीत किये । इसके अनन्तर बिहार करते हुए वे उसी सहेतुक बनमे आये और वहां तिलक वृक्षके नीचे तेला (तीन दिन ` शाम के समय केवलज्ञान प्राप्त हो गया । देवोंने आकर उनके ज्ञान कल्याणक की पूजा की । कुबेरने समवसरण बनाया । उसके मध्यमें स्थित होकर उन्होंने अपना मौन भंग किया -दिव्य ध्वनिके द्वारा पदार्थोंका व्याख्यान किया और चारों गतियोंके दु:खोंका चित्रण किया । उनके उपदेश से प्रभावित होकर अनेक नर -नारियों ने मुनि, आर्यिका और श्रावण श्राविकाओं के व्रत धारण किये थे । प्रथम उपदेश समाप्त होनेके बाद उन्होंने अनेक आर्य क्षेत्रोमें बिहार किया था जिससे जैन धर्मका सर्वत्र सामूहिक प्रचार हुआ था । उनके समवसरण में स्वयम्भू आदि पेंतीस गणधर थे सात सौ श्रुतकेवली थे, तेतालीस हजार एक सौ पचास शिक्षक थे, दो हजार पांच सौ अवधिज्ञानी थे, तीन हजार दो सौ केवलज्ञानी थे, पांच हजार एक से विक्रियाऋध्दिके धारक थे, तीन हजार तीन सौ मन:पर्ययज्ञानी थें और दो हजार पचास वादी शास्त्रार्थ करने वाले थे । इस तरह सब मिलकर साठ हजार मुनिराज थे । भविता आदि साठ हजार तीन सौ पचास आर्यिकाए थी । तीन लाख श्रावक, दो लाख श्राविकायें, असंख्यात देव देवियां और संख्यात तिर्यच थे । जब उनकी आयु सिर्फ एक महाकी बाकी रह गई तब वे सम्मेद शिखर पर पहुंचे और वहीं पर प्रतिमा योग धारण कर एक हजार मुनियोंके साथ वैसाख शुक्ला परिवारके दिन कृतिका नक्षत्रमें रात्रिके पूर्वभागमें मोक्ष मन्दिरके अतिथि बन गये । देवोंने आकर उनके निर्वाण क्षेत्र की पूजा की । भगवान् कुन्थुनाथ, तीर्थंकर, चक्रवर्ती और कामदेव इन तीन पदवियोंसे विभूषित थे । इनका बकरे का चिन्ह था ।

भगवान अहरनाथ

शार्दूलविक्रीडितम्

त्यक्तं येन कुलालचक्रमिव तच्चक धराचक्रचित् ।
श्रीश्चासौघट दासिकव परम श्रीधर्मचक्रे प्सया ।।
युष्मान् भक्तिभरानतान्स दुरितारति रथ ध्वंसकृत् ।
पायाद्भव्यजनानरो जिनपति: संसार भीरुन् सदा ।।

-

आचार्य गुणभ्रद

जिसने भूमण्डन को संचित करने वाले चक्ररन्तको कुम्भकार के चक्र के समान छोड दिया और जिसने अर्हत्य लक्ष्मी तथा धर्मचक्र की प्राप्ति की इच्छा से राज्य लक्ष्मी को घर दासी (पानी भरने वाली) की तरह छोड दिया वे पाप रुपी वैरियोंका विध्वंस करने वाले भगवान् अमरनाथ, भक्तिभाव से नम्रीभूत और संसारसे डरने वाले भव्यजनों की रक्षा करें ।

(१) पूर्वभव परिचय

जम्बू द्वीप के विदेह क्षेत्र में सीता नदी के उत्तर तटपर एक कच्छ नामका देश है । उसके क्षेमपुर नगर में किसी समय धनपर्ति नामका राजा राज्य करता था । वह बुध्दीमान था, बलवान था, न्यायवान था, प्रतापवान् था, और था बहुत ही दयावान् । उसने अपने दान से कल्पवृक्षों को और निर्मल यश से शरच्चन्द्र के मरीचि मण्डल को भी पराजित कर दिया था उसकी चतुराई और बलका सबसे बडा उदाहरण यही था कि अपने जीवन में कभी उसका कोई शत्रु नही था । वह दीन दु:खी जीवोंके दु:ख को देखकर बहुत ही दु:खी हो जाता था । इसलिये वह तन मन धनसे उनकी सहायता किया करता था । उसके राज्य में प्रजा सभी लोग अपनी अपनी आजीविका के क्रमोंका उल्लंघन नही करते थे । इसलिये कोई दुखी नही था ।

किसी एक दिन राजाने अर्हन्नन्दन नाम के तीर्थंकर से धर्मका स्वरुप और चतुर्गतियों के दु:खोंको श्रवण किया जिससे उसका चित्त विषयानन्द से सर्वथा हट गया । उसने अपना राज्य पुत्र के लिये दे दिया और स्वयं किन्ही आचार्यके पास दीक्षित हो गया । उनके पास रहकर उसने ग्यारह अंगोंका अध्ययन किया तथा दर्शन विशुध्द आदि सोलह कारण भावनाओंका चित्तवन किया जिससे उसे तीर्थंकर नामक महापुण्य प्रकृतिका बन्ध हो गया । इस तरह कुछ वर्षो तक कठिन तपस्या करनेके बाद उसने आयुके अन्त में समाधिमरण किया जिससे वह जयन्त नाम के अनुत्तर विमान में अहमिन्द्र हुआ । वहां उसकी आयु तेतीस सागर, प्रमाण थी लेश्या शुक्ल

थी और शरीरकी ऊंचाई एक हाथ की थी । वहां वह अवधिज्ञानसे सातवें नरक तककी बात जान लेता था । तेतीस हजार वर्ष बाद मानसिक आहार लेता और तेतीस पक्षमें एक बार सुगनिधत श्वासोछ्वास ग्रहण करता था । वहां वह प्रवीचार सम्बन्ध से सर्वथा रहित था । उसका समस्त समय जिन पूजा या तत्व चर्चाओं में ही बीतता था यही अहमिन्द्र आगेके भव्य में भगवान अरनाथ होगा ।

(१) पूर्वभाव वर्णन

जम्बू द्वीप के भरत क्षेत्र में कुरुजांगल देश है । उसके हस्तिनापूर नगर में सोमवंशीय काश्यपगोत्री राज सुदर्शन राज्य करता था । उसकी स्त्रीया नाम मित्रसेना था । दोनों राज दम्पतियों में घना प्रेम था । तर तरह के कौतुक करते हुए उन दोनोंका समय बहुत ही सुखसे- व्यतीत होता था । जब ऊ पर कहे हुए अहमिन्द्र की आयु सिर्फ छह माहकी बाकी रह गई तबसे राज सुदर्शनके घरपर देवोंने रत्नवर्षा करनी शुरु कर दी । कुवेरने एक नवीन हस्तिनापुर की रचनाकर उसमें महाराज सुदर्शन तथा समस्त नागरिक प्रजाको ठहराया । इन्द्रकी आज्ञा से देवकुमारियां आ आकर रानी मित्रासेना की सेवा करने लगी । इस सब शुभ निमित्तोंको देखकर राजा प्रजा को बहुत ही आनन्द होता था ।

फाल्गुण कृष्ण तृतीया के दिन रेवती नक्षत्रका उदय रहते हुए पिछली रातमें मित्र सेना महादेवीने सोलह स्वप्न देखे । उसी समय उक्त अहमिन्द्र जयन्त विमान से च्युत होकर उसकेगर्भमें आया । सवेरा होते ही रानीने प्राणनाथ-राजा से स्वप्नोंका फल पूछा तब उन्होंने कहा कि आज तुम्हारे गर्भ में जगद्वन्ध किसी महापुरुषने प्रवेश किया है । नव माह बाद तुम्हारे प्रतापी पुत्र उत्पन्न होगा ।

इधर राजा सुदर्शन रानी को स्वप्नोंका फल सुना रहे थे उधर जय जय शब्द से आकाश को गुन्हाते हुए देव लोग आ गये और भावी तीर्थंकर अरनाथ का गर्भकल्याण उत्सव मनाने लगे । उन्होंने माता पिता-सुदर्शन और मित्र सेना का बहुत ही सन्मान किया और उन्हे स्वर्ग से लाये-हुये अनेक वस्त्राभूषण भेट किये । गर्भाधान का उत्सव समाप्त कर देव लोग अपने अपने स्थानं-पर चले गये ।

नौ माह बाद रानी मित्रसेना ने मंगशिर शुल्का चतुर्दशी के दिन पुष्प नक्षत्र में मतिश्रुत और अवधि ज्ञानसे विराजित तीर्थंकर पुत्र को उत्पन्न किया । पुत्र के उत्पन्न होते ही सब ओर आनन्द छा गया । भक्ति से प्रेरे हुए चारों निकायोंके देवोंने मेरु पर्वत पर ले- जाकर उसका अभिषेक किया । वहांसे लौटकर इन्द्रने महाराज सुदर्शन के घर पर आनन्द नामका नाटक किया तथा अनेक प्रकारके उत्सव

किये । उस समय राज भवन में जो भिड जमा थी उस से ऐसा मालूम होता था कि मानो तीनों लोकों के समस्त प्राणी वहां पर एकत्रित हो गये हो । तीर्थंकर पुत्र का बालक का अमरनाथ नाम रक्खा गया । देव लोग जन्मकल्याण का उत्सव समाप्त कर अपने अपने स्थानों पर चले गये । राज भवन में भगवानं अरनाथ का बडे प्यार से पालन होने लगा । वे अपनी बाल चेष्टाओं से माता पिता बन्धु बान्धाव आदि को बहुत ही हर्षित करते थे । माता मित्रसेना की आशाओं के साथ वे निरन्तर बढने लगे । जब उन्होंने- युवावस्था में पदार्पण किया तब उनकी शोभा बहुत ही विचित्र हो गई थी । उनकी सुन्दरता पर मुग्ध होकर उन्हें कामदेव कहने लगे थे ।

श्रीकुन्थुनाथ तीर्थंकर के बाद एक हजार करोड वर्ष कम चौथाई पल्य बीत जानेपर भगवान अरनाथ हुये थे । उनकी आयु भी इसी अन्तराल में शामिल है । जिनराज अरनाथ की उत्कृष्ट आयु चौरासी हजार वर्षकी थी । तीस धनुष ऊं चा शरीर की कान्ति सुवर्ण के समान ससृण -स्निग्ध पीली थी । उनके शरीर को रोग शोक दु:ख वगैरह तो छू भी नही गये थे । योग्य अवस्था देखकर महाराज सुदर्शन ने उनका कुलीन कन्याओं के साथ विवाह कर दिया और कुछ समय बाद उन्हें राज्य प्राप्त हुआ और इतने ही वर्ष बाद उनकी आयु धशाला में चक्ररत्न प्रकट हुआ । भगवान् अरनाथ चक्ररत्न को आगेकर असंख्य सेनाओं के साथ दिग्वीजय के लिये निकल और कुछ वर्षों में ही समस्त भरतक्षेत्र में अपना अधिपत्य स्थापितकर हस्तिनापुर वापिस लौट आये । दिग्वीजयी सम्राट अरनाथका नगर प्रवेशोत्सव बडी सजधज से मनाया गया था । उन्होंने चक्रवर्ती होकर इक्कीस इजार वर्ष तक राज्य किया और इस तरह उनकी आयुका तीन चौथाई हिस्सा गृहस्थ अवस्था में ही बीत गया । एक दिन उन्हें शरद् ऋतु के बादलोंका नष्ट होना देखकर वैरागय उत्पन्न हो गया । उसी समय लौकान्तिक देवोंने आकर स्तुति की और उनके बिचारों का समर्थन किया जिससे उनकी वैराग्य भावना बडी ही प्रबल हो उठी थी लौकान्तिक देव अपना कार्य पूरा समझ कर स्वर्ग को चले गये और उनके बदले समस्त देव देवेन्द्र आये । उन सबसे मिलकर भगवान् अरनाथ का दीक्षा अभिषेक किया तथा वैरागय को बढाने वाले अनेक उत्सव किये । भगवान् अरनाथ अपने पुत्र अरविन्दकुमार के लिये राज्य देकर देवनिर्मित बैजयन्ती नाम की पालकी पर सवार हो सहेतुक बन में पहुंचे। वहां उन्होंने दो दिनके उपवासकी प्रतिज्ञा लेकर मगसिर शुल्का दशमी के दिन रेवती नक्षत्रके समय जिनदीक्षा धारण कर ली - समस्त वस्त्राभूषण उतारकर फे क दिये और पंच मुष्टियोंसे सिर परके केश उखाड डाले ।

उन्हें उसी समय मन:पर्याय ज्ञान भी प्राप्त हो गया था । उनके साथ में एक हजार राजाओंने भी दीक्षा ली थी । देव लोग नि:क्रमण कल्याणक का उत्सव समाप्त कर अपने अपने घर चले गये और भगवान् अरनाथ मेरु पर्वत की तरह अचल हो आत्मध्यान में लीन हो गये । पारणे के दिन वे चक्रपुर नगर में गये वहां राजा अपराजित ने आहार दिया । पात्रदानसे प्रभावित होकर देवोंने अपराजित राजा के घर पर पंचाश्चर्य प्रकट किये । आहार लेने के बाद वे बनमें लौट आये और वहां कठिन तपश्चर्याओं के द्वारा आत्मशुध्दि करने लगे ।

उन्होंने कई जगह बिहार कर छद्मस्थ अवस्था के सोलह वर्ष व्यतीत किये, । इन दिनों में वे मौनपूर्वक रहते थे । इसके अनन्तर वे उसी सहेतुक बनमें आकर दो दिन के उपवासक की प्रतिज्ञा ले माकरंद- आमने पेडके नीचे बैठे गये । वहां पर उन्हें घातिया कर्मोंकक्षय हो - जानेसे कार्तिक शुल्का । व्दादशी के दिन रेवती नक्षत्रमें शाम के समय पूर्ण ज्ञान केवलज्ञान प्राप्त हो गया । जिससे व समस्त जगत् की चराचर वस्तुओंको हस्ताकमलवत् स्पष्ट जानने लगे । उसी समय दवोंने आकर ज्ञानकल्याणक का उत्सव किया । कुवेरने दिव्य सभा समवसरण की रचना की जिसके मध्यमें सिंहासन पर अन्तरीक्ष विराजमान होकर उन्होंने अपना सोलह वर्षका मौन भंग किया मधुर ध्वनीमें सबको उपदेश देने लगे । उपदेश के समय समवसरण की बारहां सभायें खचाखच भरी हुई थी । उनके उपदेश से प्रतिबुध्द होकर अनेक नर-नारियोंने ब्रत दीक्षाएं ग्रहण की थी । इसके बाद उन्होंने अनेक क्षेत्रोंमे विहार किया और जैनधर्म का ठोस प्रचार किया । अनेक पथ-भ्रान्त पुरुषोंको सच्चे पथपर लगाया ।

उनके समवशरण में कुम्भार्य आदि तीस गणधर थे, छह सौ दश श्रुतकेवली थे, पैतीस हजार आठ सौ पैतीस शिक्षक थे, अट्ठाईस सौ अवधिज्ञानी थे, इतने ही केवलज्ञानी थे, चार हजार तीन सौ विक्रया ऋध्दि के धारक थे, दो हजार पचपन मन:पर्याय ज्ञानी थे और एक हजार छह सौ बादी थे । इस तरह सब मिलाकर अर्ध्द लक्ष (पचास हजार) मुनिराज थे, तीन लाख श्राविकायें थी असंख्यात देव-देवियां और संख्यात तिर्यच थे ।

जब उनकी आयु एक माह की अवशिष्ट रह गई तब उन्होंने सम्मेद शिखरपर पहुंचकर एक हजार मुनियोंके साथ प्रतिमा योग धारण कर लिया और वहांसे चैत्र कृष्ण अमावस्याके दिन रेवती नक्षत्र में रात्रि के पहले पहरमें मोक्ष प्राप्त किया ।

देवोंने आकर उनके निर्वाण क्षेत्र की पूजा की तथा अनेक उत्सव मनाये । श्री अरनाथ भी पहले दो तिर्थंकरों की तरह तीर्थंकर, चक्रवर्ती और कामदेव इन तीन पदवियोंके धारक थे ।

भगवान मल्लिनाथ

मोह मल्ल मद भेदन धीरं कातिंमान मुखरीकृत वीरम् ।
धैर्यखंग विनिपातित मारं तं नमामि वर मल्लिकुमारम् ।। - लेखक

जो मोह - मल्लके भेदन करनेमें धीर-वीर है, जिन्होंने अपनी कीर्ति गाथाओं से वीर मनुष्योंको वाचालित किया है और जिन्होंने धैर्य रुप कृपाण से कामदेव को नष्ट कर दिया है मै उन मल्लिकु मार को नमस्कार करता हूं ।

(१) पूर्वभव वर्णन

जब्मू द्वीप के विदेह क्षेत्रामें मेरु पर्वतसे पूर्व की ओर एक कच्छ्पवती देश है । उस में अपनी शोभासे स्वर्गपुरी को जीतनेवाली एक बीतशो का नाम की नगरी है । किसी समय उसमें वैष्णव नामका राजा राज्य करता था । राजा वैश्रवण महा बुध्दिमान् और प्रतापी पुरुष था । उसनं अपने पुरुषार्थसे समस्त पृथ्वी को अपने आधीन कर लिया था । वह हमेशा प्रजा के कल्याण करनेमें तत्तर रहता था । दीनदुखियों की हमेशा सहायता किया करता था और कला-कौशल विद्या आदिके प्रचार में विशष योग देता था । एक दिन राजा वेश्रवण वर्षा ऋतु की शोभा देखने के लिये कुछ ईष्ट-मित्रों के साथ बन में गया था । वहां सुन्दर, हरियाली, निर्मल, निर्झर, नदियौंका मनोहर नृत्य देखकर उसकी तबियत बाग बाग हो गई । वर्षा ऋतुकी सुन्दर शोभा देखकर उसे बहुत ही हर्ष हुआ । वही बनमें घूमते समय राजाक ो एक विशाल बडका वृक्ष मिला, जो अपनी शाखोंसे आकाश के बहु भाग को घेरे हुये था । वह अपने हरे हरे पत्तोंसे समस्त दिशाओंको हरा हरा कर रहा था । और लटकते हुये पत्तोंसे जमीनको खूब पकडेहुये था । राजा उस बटवृक्ष की शोभा अपने साथियों को दिखलाता हुआ आगे चला गया । कुछ देर बाद जब वह उसी रास्तेसे लौटा तब उसने देख कि बिजलीके गिरने से वह विशाल बडका वृक्ष जड तक जल चुका है । यह देखकर उसका मन विषयोंसे सहसा विरक्त हो गया । वह सोचने लगा कि जब इतना सुदृढ वृक्ष भी क्षण एक में नष्ट हो गया तब दूसरा कौन पदार्थ स्थिर रह सकता है ? मैं जिन भौतिक भोगोंको सुस्थिर समझकर

उनमें तल्लीन हो रहा हूं वे सभी इसी तरह भंगुर है । मैने इतनी विशाल आयु व्यर्थ ही खो दी । कोई ऐसा काम नहीं किया जो मुझे-संसारकी महा व्यथासे हटाकर सच्चे सुखकी ओर ले जा सके । इत्यादि विचार करता हुआ राजा वैश्रवण अपने घर लौट आया और वहां पुत्र को राज्य दे किसी वनमें पहुंचकर श्रीनाग नामक मुनिराज के पास दीक्षीत हो गया । वहां उसने उग्र पतत्यासे आत्म हृदयको सुविशुध्द बनाया और निरन्तर अध्ययन करते हुए ग्यारह अंगोतक का ज्ञानप्राप्त किया । उसी समय उसने दर्शन

(२) वर्तमान परिचय

जम्बू द्वीप के भरत क्षेत्र के बंग-बंगाल नाम के देश में एक मिथिला नाम की नगरी है । जिस की उर्बरा जमीनमें हर एक प्रकार की शस्य होती है । उसमें किसी समय इक्ष्वाकु वंशीय काश्यप गोत्री राजा कुम्भ राज्य करते थे । उनकी महारानी का नाम प्रजावती था । दोनों दम्पति सुख से समय बिताते थे । ऊपर जिस अहमिन्द्र का कथन कर चुके है उसकी सब वहांपर (अपराजित-विमान में) सिर्फ छह माह की आयु बाकी रह गई तबसे रानी प्रजावती के घरपर कुबेर ने रत्नो की वर्षा करनी शुरु कर दी । चैत्रा शुक्ला प्रतिपदा के दिन अश्विनी नक्षत्र में रात्रि के पिछले पहर में उसने हाथी आदि सोलह स्वप्न देखे और मुंह में प्रवेश करते- हुये एक गन्ध सिन्धुर-मत्त हाथी को देखा । उसी समय उक्त अहमिन्द्र ने अपराजित विमान से जचकर रानी प्रजावती के गर्भ में किसी महापुरुष तीर्थंकर ने पदार्पण किया है । नौ माह बाद तुम्हारे तीर्थंकर पुत्र उत्पन्न होगा । ये सोलह स्वप्न उसीका अभ्युदय बतला रहे है ।

राजा यह कहकर रुके ही थे कि इतनेमें आकाश मार्ग से असंख्य देव जय जय शब्द करते हुये उनके पास आ पहुंचे । देवोंने भक्ति पूर्वक राजदम्पति का नमस्कार किया और अनेक सुन्दर शब्दों में उनकी स्तुति की । साथ में लाये हुये दिव्य वस्त्राभूषणों से उन की पूजा की तथा भगवान् मल्लिनाथ के गर्भावतार का समाचार प्रकट कर अनेक उत्सव किये । देवोंके चले जानेपर भी अनेक देवियां महारानी प्रजावती की सेवा शुश्रूषा करती रही थी । जिस से उसेगर्भ सम्बन्धी किसी भी कष्ट का सामना नहीं करना पडा था ।

जब धीरे धीरे गर्भ के नौ माह बीत गये तब उसने मार्गशिर्ष सुदी एकादशी के दिन अश्विनी नक्षत्रमें उस पुत्र रत्न को उत्पन्न किया, जो पूर्ण चन्द्र की तरह चमकता था, जिस के सब अवयव अलग अलग विभक्त थे ओर जो जन्म से ही

मतिश्रुत तथा अवधिज्ञान से विभूषित था । उसी समय इन्द्रादि देवोंने बालक को मेरु शिखरपर ले जाकर वाहं क्षीर-सागर के जलसे उसका कलशाभिषेक किया । बाद में घर लाकर माताकी गोदमें बैठा दिया और तांडव नृत्य आदि अनेक उत्सवों से उपस्थित जनता को आनन्दित किया । जन्मका उत्सव समाप्त कर देव लोग अपनी अपनी जगहपर चले गये । वहां राज भवन में बालक मल्लिनाथका उचित रुप से लालन पालन होने लगा ।

क्रम-क्रम से बाल्य और कुमार अवस्थाको व्यातीत कर जब उन्होंने युवावस्था में पदार्पण किया तब उनके शरीर की आभा बहुत ही विचित्र हो गई थी । उस समय उनका सुन्दर सुडौल शरीर देखकर हर एक की आंखे संतृप्त हो जाती थी । अठारहवें तीर्थकर भगवान् अरनाथ के बाद एक हजार करोड वर्ष बीत जानेपर भगवान मल्लिनाथ हुये थे । उनकी आयु भी इसी अन्तराल में शामिल है । पंचपंचाशत्-पचपन हजार वर्षकी उनकी आयु थी । पच्चीस धनुष ऊंचा शरीर था, और सुवर्ण के समान शरीर की कान्ति थी । जब भगवान मल्लिनाथ की आयु सौ वर्ष की हो गई तब उनके पिता महाराज कुम्भने उन के विवाह की तैयारी की । मल्लिनाथ के विवाहोत्सव के लिये पुरवासियों ने मिथिलापुरी को खूब ही सजाया । अपने द्वारोंपर मणियों की बन्दन मालाएं बांधी । मकानों की शिखरों पर पताकायें फहराई । मार्ग में सुगन्धित जल सींचकर फूल बरसाये और कई तरह के बाजों के शब्दों से नभ को गुंजा दिया । इधर राज परिवार और पुरवासी विवाहोत्सव की तैयारी में लग रहे थे, उधर भगवान मल्लिनाथ राजा भवन के विजन स्थान में बैठे हुये सोच रहे थे कि विवाह, यह एक प्रचण्ड पवन है, जिस के प्रबल झकोरों से प्रशांत हुई विषयवन्हि पुन: प्रदीप्त हो उठती है । विवाह, यह एक मलिन कर्दम-कीचड है जो कि आत्म क्षेत्र को सर्वथा मलिन बना देती है । विवाह को सभी कोई बुरी दृष्टिसे देखते आये है और है भी बुरी चीज । तब मै क्यों व्यर्थ ही इस जंजाल में अपने आप को फंसा दूं । मेरा सुदृढ निश्चय है कि मेरे जो उच्च विचार और उन्नत भावनाएं है विवाह उन सब पर एकदम पानी फेंर देगा । मेरे उन्नतिके मार्ग में यह विवाह एक अचल-पर्वत की तरह आडा हो जायेगा । इसलिये मै आज निश्चय करता हूं कि अब मै इन भौतिक भोगों पर लात मार कर शीघ्र ही असत्मीय आदन्द की प्राप्ति के लिये प्रयत्न करुंगा । उसी समय लोकान्तिक देवोंने उनके उच्च आदर्श बिचारों का समर्थन किया जिससे उनका वैराग्य अधिक प्रकर्षता को प्राप्त हो गया । अपना कार्य समाप्त कर लौकान्तिक देव अपने-अपने स्थानों पर चले

गये और सौधर्म आदि इन्द्रोंने आकर दीक्षा-कल्याणक का उत्सव करना आरम्भ कर दिया । भगवान् मल्लिनाथ के इस आकस्मिक विचार परिवर्तन से सारी मिथिला में क्षोभ मच गया । उभय पक्ष के मातापिता के हृदय पर भारी ठेस पहुंची । पर उपाय ही क्या था । विवाह की समस्त तैयारियां एकदम बन्द कर दी गई। उस समय नगरी में श्रृङ्गार और शान्त रसका अद्भूत समर हो रहा था । उन्तमें-शान्तरसने श्रृङ्गार को धराशायी बनाकर सब ओर अपना अधिपत्य जमा लिया था । देवोंने भगवान् मल्लिनाथ का अभिषेक कर उन्हें अच्छे-अच्छे वस्त्राभूषण पहिनाये । दीक्षाभिषेक क बाद वे -देव-निर्मित जयंत नामकी पाल की पर सवार होकर श्वेत बनमें पहुंचे और वहां दो दिन के उपवास की प्रतिज्ञा लेकर मार्गशिर्ष सुदी एकादशी के दिन अश्विनी नक्षत्र में शामके समय तीन सौ राजाओं के साथ नग्न दिगम्बर हो गये -सब वस्त्राभूषन उतारकर फें क दिये तथा पंचमुष्टियोंसे केश लुंचकर अलग कर दिये । उन्हें दीक्षा धारण करते ही मन:पर्यय ज्ञान प्राप्त हो गया था । तीसरे-दिन वे आहार के लिये मिथिलापुरी में गये । वहां उन्हें नन्दिषेणने भक्तिपूर्वक आहार दिया । पात्रदान से प्रभावित होकर नन्दिषेणके घर पर देवोंने पंचाश्चर्य प्रकट किये ।

आहार लेकर मल्लिनाथ पुन: बनमे लौट आये और-ध्यान में लीन हो गये । दीक्षा लेनेके दह दिन बाद उन्हें उसी श्वेत बनमें अशोक वृक्षके नीचे जन्म तिथि-मार्गशीर्ष सुदी एकादशी के दिन अश्विनी नक्षत्र में प्रात:कालके समय दिव्यज्ञान: केवलज्ञान प्राप्त हो गया । उसी समय इन्द्र आदि देवोंने आकर ज्ञान-कल्याणक का उत्सव मनाया । इन्द्रकी आज्ञा पाकर कुबेरके समवसरण धर्मसभा की रचना की । उसके मध्यमें विराजमान होकर भगवान मल्लिनाथ ने अपना छह दिनका मौन भंग किया । दिव्य ध्वनि द्वारा सतत्व, नवपदार्थ, छहद्रव्य आदिका पुष्कल विवेचन किया । चारों गयिोंके दु:खोंका वर्णन किया जिससे प्रभावित होकर अनेक नर-नारियोंने मुनि-आर्यिका और श्रावक-श्राविकाओंके ब्रत धारण किये ।

उनके समवसरण में विशाख आदि अट्ठाईस गणधर थे, साढे पांच सौ ग्यारह अंग चौदह पूर्व के जानकर थें उनतीस हजार शिक्षक थे, दो हजार दौ सौ अवधिज्ञानी थे, इतने ही केवलज्ञानी थे, एक हजार चार सौ वादी थे, दो हजार नौ सौ विक्रिया ऋध्दि के धारक थे और एक हजार सात सौ पचास मन:पर्यय ज्ञानी थे । इस तरह सब मिलाकर चालीस हजार मुनिराज थे । बन्धुषेणा आदि पचपन हजार आर्यिकाये थी, एक लाख श्रावक थे, तीन लाख श्राविकांये थी, असंख्यात देव-देवियां थी और संख्यात तिर्थच्च थे । भगवान् मल्लिनाथ ने अनेक आर्य क्षेत्रोमें

विहार कर पथ-भ्रान्त पथिकोंको मोक्षका सच्चा रास्ता बतलाया । जब उनकी आयु सिर्फ एक माहकी बाकी रह गई तब उन्होंने योग निरोधकर फाल्गुन शुक्ला पंचमी के दिन भरणी नक्षत्र में शाम के समय कर्मोंको नष्टकर मोक्ष महल में प्रवेश किया । उसी समय देवोंने आकर सिध्द क्षेत्रकी पूजा की और निर्वाण कल्याणक का उत्सव मनाकर प्रचुर पुण्य का संचय किया ।

भगवान् मल्लिनाथ ने कुमार अवस्थामें ही अजय कामदेवको जीतकर अपने नामको सार्थक किया थां । वे महाबली थे शूरवीर थे, किन्तु नर शत्रुओंके संहारके लिये नही अपितु आत्म शत्रु, मोह, मद मदन आदि को जीतने के लिये । इस तरह इनके पवित्र जीवन और निर्मल आचारोंका विचार करने पर मल्लिनाथ स्त्री थे यह केवल कल्पना है ।

भगवान मुनिसुब्रतनाथ

अबोध कालोरग मूढ दष्ट मवुबुधत् गारुडरत्नवद्य: ।
जगत्कृताकोमल दृष्टि पातै: प्रभु: प्रसद्यान्मुनिसुब्रतो न: ।।

जिन्होंने अज्ञानरुपी काले सर्प के द्वारा डसे हुए इस मूर्छित संसार को गरुड रत्न के समान सचेत किया था वे भगवान् मुनि सुब्रतनाथ अपने कृपा कोमल दृष्टिपातके द्वारा हम सबपर प्रसन्न होवें ।

(१) पूर्वभव परिचय

जम्बू द्वीप भरतक्षेत्र के अड देश में एक चम्पापुर नामका नगर था । उसमें किसी समय हरिवर्मा नाम के राजा राज्य करते थे । महाराज हरिवर्मा अपने समयके अद्वितीय वीर बहादुर थे । उन्होंने अपने बाहुबलसे समस्त शत्राुओंकी आंखे नीचे कर दी थी ।

एक दिन चम्पापुर के किसी उद्यानमें अनन्तवीर्य नामके मुनिराज थे । उनके पुण्य प्रतापसे वनमें एक साथ छहों ऋतुओं की शोभा प्रकट हो गई । विरोधी जन्तुओंने परस्पर का बैर-भाव छोड दिया । जब वनमालीने जाकर राजा हरिवर्मा से मुनिराज अनन्तवीर्यके शुभागमन का समाचार कहा तब वे बहुत ही प्रसन्न हुए । सच है भव्य पुरुषोंको वीतराग साधुओंके समागम से जो सुख होता है वह अन्य पदार्थों के समागन से नहीं होता । आभरण आदि देकर उन्होंने-वनमाली को विदा किया और आप इष्ट परिवार के साथ पूजनकी सामग्री लेकर मुनिराज अनन्त वीर्य की वन्दन के लिये गये । वनमें पहुंचकर राज हरिवर्मा ने छन्ना, चमर आदि

राजाओंके चिन्ह दूरसे ही अलग कर दिये और शिष्य की तरह विनित होकर मुनिराजके समीप पहुंचे । अष्टांङ्ग नमस्कार कर हरिवर्मा, मुनिराज के समीप ही जमीनपर बैठ गये । अनन्त वीर्यने ङधम वृध्दिरस्तुछ करते हुए राजाके नमस्कारका प्रत्युतर दिया । और स्यादस्ति, स्थान्नास्ति, आदि सात भङ्गोंको लेकर जीव अजीव आदि तत्वोंको स्पष्ट विवेचन किया । मुनिराज के व्याख्यान से महाराज हरिवर्मा मो - आत्मबोध हो गया। उन्होंने उसी समय अपनी आत्माको पर -पदाथोंसे भिन्न अनुभव किया ओर रागद्वेषको दूर कर उसे सुविशुध्द बनाने का सदृढ निश्चय कर लिया । घर आकर उन्होंने अपने-जेष्ठ पुत्र को राज्य दिया और फिर बनमें जाकर अनेक राजाओंके साथ उन्ही अनन्त वीर्य मुनिराज के पास जिनदीक्षा ग्रहण कर ली । गुरुके पास रहकर उन्होंने ग्यारह अंगोंका ज्ञान प्राप्त किया तथा दर्शन विशुध्दि आदि सोलह भावनाओंका चिन्तवन कर तीर्थकर प्रकृतिका बन्ध किया । इस तरह बहुत दिन तक कठिन तपस्या करके आयुके अन्त में सल्लेखना विधिसे शरीर त्याग किया जिससे चौदहवें प्राणत स्वर्गमें इन्द्र हुए । वहां पर उनकी बीस सागरकी आयु थी, शुक्ल लेश्या थी, साढे, तीन हाथ ऊंचा शरीर था । बीस पक्ष बाद उच्छ्वास क्रिया और बीस हजार वर्ष बाद आहार की इच्छा होती थी । वे वहां अपने सहजात अवधिज्ञान से पांचवे नरक तक की बात जान लेते थे । उनके हजारों सुन्दरी स्त्रियां थी पर उनकं साथ कायिक प्रवीचार नहीं होता था । कपायोंकी मन्दता होनेकेकारण मानसिक संकल्प मात्रसे ही उन दम्पतियों कों कामेच्छां शांन्त हो जाती थी । यही इन्द्र आगेके भवमें भगवान् मुनिसुब्रतनाथ होंगे । कहां ? सो सुनिये ।

(२) वर्तमान परिचय

इसी भरत क्षेत्र के मगध (बिहार) प्रांत में एक राजगृह नाम का नगर है । उसमे हरिवंशका शिरोमणि सुमित्र नाम का राजा राज्य करता था । उसकी स्त्रीका नाम सोमा था । दोनो दम्पत्ति सुखसे समय व्यतीत करते थे । पहले उन्हें किसी बात की चिन्ता नहीं थी । पर जब सोमाबी अवस्था बीतती गई और कोई सन्तान पैदा नहीं हुई तब उन्हें सन्तान का अभाव निरन्तर खटकने लगा । राजा सुमित्र समझदार पुरुष थे ,संसारकी स्थिति को अच्छी तरह जानत थे, इसलिये वे अपने आपको बहुत कुछ समझाते रहते थे । उन्हें सन्तान का अभाव विशेष कुट नही मालूम होता था । पर सोमा का ह्रदय कई वार समझाने पर भी पुत्रके अभाव में शान्त नहीं होता था ।

एक दिन जब उसकी नजर गर्भवती क्रीडा हंसी पर पडी तब वह अत्यंन्त व्याकुल हो उठी और अपने आप की निन्दा करती हुई आंसू बहाने लगी । जब उसकी सखियों द्वारा राजा सुमित्र को उसके दु:ख का पता चला तब वे शीघ्र ही अन्त:पुर दौडे आये और तरह तरहके मीठे शब्दोंमें रानीको समझाने लगे । उन्होंने कहा कि जो कार्य सर्वथा दैव के व्दारा साध्य है उसमें मनुष्यका पुरुषार्थ क्या कर सकता है ? इसलिये दैव साध्य वस्तुकी प्राप्तिकेलिये चिन्ता करना व्यर्थ है इत्यादी रुपसे समझाकर सुमित्र महाराज राजसभा की ओर चले गये और रानी सोमा भी क्षण एकके लिये हृदयका दु:ख भूलकर कार्यान्तर में लग गई ।

एक दिन महाराज सुमित्र राज सभा में बैठे हुए थे कि इतनेमें इन्द्र की आज्ञा पाकर अनेक देवियां आकाश से उतरती हुई राजसभा में आई और जब जय शब्द करने लगी । राजाने उन सबका सुनकर श्रीदेवीने कहा कि महाराज ! आजसे पन्द्रह माह बाद आपकी मुख्य रानी सोमाके गर्भ से भगवान् मुनिसुब्रतनाथ का जन्म होगा । इसलिये हम सब इन्द्र की आज्ञा पाकर मुनिसब्रतनाथ की माताकी शुश्रूषा करनेके लिये आई हुई है । इधर देवियों और राजाके बीच में यह सम्बाद चलन रहा था । उधर आकाश से अनेक रत्नोंकी वर्षा होने लगी । रत्नोंकी वर्षा देखकर-देवियोंने कहा-कि महाराज ! ये सब उसी पुण्य मूर्ति बालक के अभ्युदय को बतला रह है । देवियोंके वचन सुनकर राजा बहुत ही प्रसन्न हुए । राजा की आज्ञा पाकर देवियां अन्त:पुर पहुंची और वहां महारानी सोमाकी सेवा करने लगी । छह माह बाद रानीने श्रावण कृष्णा द्वितीयाके दिन रात्रिके पिछले पहरमें सोलह स्वप्न देखे । उसी समय उक्त इन्द्रने प्राणत स्वर्ग मोह छोडकर रानी सोमाके गर्भ में प्रवेश किया, देवोंने गर्भ कल्याणक का उत्सव किया और राजदम्पति का खूब सत्कार किया । जब धीरे धीरे गर्भ के दिन पूर्ण हो गये तब रानी सोमाने वैसाख वदी दशमी के दिन श्रवण नक्षत्र में पुत्र रत्न उत्पन्न किया । देवोने आकर उसका अभिषेक किया और मुनिसुब्रत नाम रक्खा । बालक मुनिसुब्रत का राजभवन में योग्य रीतीसे लालन पालन हुआ । क्रम-क्र म से जब उन्होंने युवावस्थामें पदार्पण किया तब पिता सुमित्र महाराज ने उनका किन्ही योग्य कुलीन कन्यायोंके साथ विवाह कर दिया भगवान मुनि सुव्रत अनुकुल स्त्रियों के साथ तरह तरह के कौतुक करते हुए मदन वे की आरधना करने लगे । श्री मल्लीनाथ तीर्थकर के मोक्ष जीने के बाद चौअन लाख वर्ष बीत जानेपर भगवान मुनिसुब्रतनाथ हुए थे । उनकी आयु भी इसी अन्तराल शामिल

है । तीस हजार वर्ष की उनकी आयु थी, बीस धनुष ऊंचा शरीर था, और रंग मोर के गले की तरह नीला था ।

जब कुमार काल के सात हजार पांच सौ वर्ष बीत गये तब उन्हें राज्यगद्दी प्राप्त हुई । राज्य पाकर भगवान् मुनिसुव्रतनाथ ने प्रजा का इस तरह पालन किया था कि जिससे वह सुमित्र महाराज का स्मरण बहुत समय तक नहीं रत्न सकी थी । इस तरह आनन्दपूर्वक राज्य करते हुए जब उन्हें पन्द्रह हजार वर्ष बीत बये तब एक दिन मेघों की गर्जना सुननेसे उनके प्रधान हाथी ने खाना पीना छोड दिया । जब लोगोंने मुनिसुब्रत स्वामी से उसका कारण पूछा तब वे अवधिज्ञान से सोचकर कहने लगे- कि यह हाथी इससे पहले भवमें तालपुर नगर का स्वामी नरपति नामका राजा था । उसे अपने कुल, धन ऐश्वर्य आदिका बहुत ही अभिमान था उसने एक बार पात्र अपत्र का कुछ भी पता नही है । न बडी भारी राज्य संपदा का । यह मुर्ख केवल वन का स्मरण कर दु:खी हो रहा है । भगवान के उक्त वचन सुनकर उस हाथीको अपने पूर्वभाव का स्मरण हो आया जिससे उसने शीघ्र ही देशभक्त धारण कर लिये । इसी घटनासे भगवान मुनि सुब्रतनाथ को भी आत्मज्ञान उत्पन्न हो गया । वे संसार परिभ्रमण से एकदम उदास हो गये । उसी समय उन्होंने विषयों की निरसारता का विचार कर उन्हें छोडने का सुदृढ निश्चय कर लिया ।

लौकान्तिक देवोंने आकर उनके उक्त बिचारों का समर्थन किया जिससे उनका वैराग्य और भी अधिक बढ गया । अपना कार्य पूरा कर लौकान्तिक देव तो अपने स्थानपर चले गये और चतुर्णिकाय के देवोंने आकर दीक्षा कल्याणक का उत्सव मनाया । भगवान मुनि सुब्रतनाथ युवराज विजय को राज्य देकर देवनिर्मित अपराजिता पालकी पर सार हो नील नामक बनमें पहुंचे वहाँ उन्हाने कृष्णा दशमी के दिन श्रवण नक्षत्र में शाम के समय तेलातीन दिन के उपवास की प्रतिज्ञा लेकर एक हजार राजाओंके साथ जिन दीक्षा ले ली । उन्हे जिन दीक्षा लेते ही मन:पर्यय ज्ञान तथा अनेक ऋध्दियां प्राप्त हो गई थी । चौथे दिन आहार लेने के कलये वे राजगृह नगरी में पहुंचे । वहां उन्हें वृषभसेनके घर पर पंचाश्चर्य प्रकट कियें राजगृही से लौटकर उन्होने ग्यारह महीने तक कठिन तपश्चरण किया और फिर वैसाख कृष्ण नवमी के दिन श्रवण नक्षत्र में शाम के समय उसी नील वनमें चम्पक वृक्ष के नीचे केवलज्ञान प्राप्त कर लिया । केवलज्ञान के द्वारा वे विश्वके चराचर पदार्थो को एक साथ जानने लगे थे । उसी समय देवोंने आकर ज्ञान कल्याणक का उत्सव किया । धनपतिने दिव्य सभा-समवसरण की रचना की । उसके मध्य में

स्थित होकर उन्होंने अपना मौन भंग किया -दिव्य ध्वनी के द्वारा सर्वोपयोगी तत्वों क ा स्पष्ट विवेचन किया । चारों गतियोंके दु:खोंका लौमहर्षण वर्णन किया, जिससे अनेक भव्य जीव प्रतिबुध्द हो गये थे । इन्द्रकी प्रार्थना सुनकर उन्होंने अनेक आर्य क्षेत्रों में विहार किया और असंख्य नर नारियोंको धर्म का सच्चा स्वरुप समझाया । धीरे धीरे उनके समवसरण में मल्लि आदि अठारह गणधर थे, पांच सौ द्वादशांग के जानकार थै, इक्कीस हजार शिक्षक थे, एक हजार आठ सौ विक्रियाऋध्दि के धारक थे और एक हजार दो सौ वादी थे । इस तरह सब मिलकर तीस हजार मुनिराज थे । इनके सिवाय पुष्पदत्ता आदि पचास हजार अर्यिकाएं थी, एक लाख श्रावक थे, तीन लाख श्राविकाएं थी असंख्यात देवदेवियां और संख्यात तिर्यच थे । इन सबके साथ भगवान मुनि सुब्रतनाथ अनेक आर्य क्षेत्रों में बिहार करते थे ।

निरन्तर बिहार करते-करते जब उनकी आयु एक माह अवशिष्ट रह गई तब उन्होंने सम्मेद शिखरपर पहुंचकर वहां एक हजार राजाओंके साथ प्रतिमा योग धारण कर लिया और शुक्ल ध्यान के द्वारा अघाति चतुष्क का क्षय कर फाल्गुन कृष्ण द्वादशीके दिन श्रवण नक्षत्र में रात्रिके पिछले पहर मुक्ति मन्दिर में प्रवेश किया । इन्द्र आदि देवोंने आकर उनके निर्वाण कल्याणक का महान उत्सव किया ।

भगवान नमिनाथ

शिखरिणी

स्तुति:स्तोतु: साधो कुशल परिणमाय स तदा,

भवेन्माचा स्तुत्य: फलमपि ततस्तस्य च सत: ।

किमेवं स्वाधीनाज्जगति सुलभ श्रायस पथे,

स्तुयान्नत्वा विद्वान सततमपि पूज्यं नमिजिनम् ।। (स्वामी समन्तभद्र)

साधुकी स्तुति, स्तुति करने वाले के कुशल, अच्छे परिणाम के लिये होती है । यद्यपि उस समय स्तुति करने योग्य साधु सामने मौजूद हों और न भी हों तथापि उस उत्कृष्ट स्तोता के स्तुतिका फल होता है । इस तरह संसार में अपनी आधिनता के अनुसार जबकि हितका मार्ग सुलभ हो रहा है, तब कौन विद्वान हमेशा पूजनीय भगवान नामिनाथ को नहीं पूजैगा ? अर्थात् सभी पूजेंगे ।

(१) पूर्वभव परिचय

जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्र में एक वत्स नामका देश है, उसकी कौशाम्बी नाम की नगरी में किसी समय पार्थिव नाम का राजा राज्य करता था । पार्थिवक ी प्रधान पत्नी का नाम सुन्दरी था । ये दोनों राज-दम्पति सुखसे काल यापन करते थे । कु छ समय बाद इनके सिध्दार्थ नामका पुत्र पैदा हुआ । सिध्दार्थ बडा ही होन पर बालक था । जब वह बडा हुआ तब राजा पार्थिव ने उसे युवराज बना दिया । एक दिन पार्थिव महाराज मनोहर नाम के बगीचे में घूम रहे थे । वहीं पर उन्हें एक मुनिवर नाम के साधु के दर्शन हुए । राजाने उन्हें भक्ति से झुकाकर नमस्कार किया और उनके मुखसे धर्मका स्वरुप सुना । धर्म का स्वरुप सुन चुकने के बाद उसने अपने पूर्वभव पूछे तब मुनिवर मुनिराजने अवधिज्ञान रुपी नेंत्रों से स्पष्ट देखकर उसके पूर्वभव कहे । अपने पूर्वभवों का समाचार जानकर राजा पार्थिवको वैराग्य उत्पन्न हो गया । उसने घर आकर युवराज सिध्दार्थको राज्य दिया और फिर बनमें पहुंचकर उन्ही मुनिराज के पास जिन दीक्षा ले ली । इधर सिध्दार्थ भी पिता का राज्य पाकर बडी कु शलता से प्रजा का पालन करने लगा । कालक्र म से सिध्दार्थ के एक श्रीदत्त नाम का पुत्र हुआ जो अपने शुभ-लक्षणों से कोई महापुरुष मालूम होता था । किसी समय राजा सिध्दार्थको अपने पिता पार्थिव मुनिराज के समाधिमरण का समाचार मिला जिससे वह उसी समय विषयोंसे विरक्त होकर मनोहर नाम के बन में गया और वहां महाबल नामक केवली के दर्शन कर उनसे तत्वोंका स्वरुप पूछने लगा । केवलीश्वर महाबल भगवान के उपदेश से उसका वैराग्य पहलेसे और भी अधिक बढ गया । इसलिये वह युवराज श्रीदत्त के लिये राज्य देकर उन्हीं केवली भगवानकी चरण छाया में दीक्षीत हो गया । उनके पास रहकर उसने क्षायिक सम्यग्दर्शन प्राप्त किया, ग्यारह अंगोका अध्ययन किया और विशुध्द ह्रदय से दर्शन विशुध्दि आदि सोलह कारण भावनाओंका चिन्तयन कर तीर्थंकर नामक पुण्य प्रकृतिका बन्ध किया तथा आयु के अंत में समाधि धारणकर अपराजित नामक विमान में अहमिन्द्र हुआ । वहां उसकी आयु तैतीस सागर की थी शरीर एक अरन्ति काथ ऊंचा था, शुक्ल लेश्या थी तेतीस हजार वर्ष बाद मानसिक आहार लेता और तेतीस पक्ष बाद श्वासोच्छ्वास ग्रहण करता था । वहां वह अपने अवधिज्ञान से सप्तम नरक तक की वार्ताएं स्पष्ट जान लेता था । यही अहमिन्द्र आगे चलकर भगवान् नामिनाथ होगा और संसार का कल्याण करेगा ।

(२) वर्तमान परिचय

वहां अनेक तरह के सुख भोगते हुए जब उसकी आयु सिर्फ छह माह की रह गई और वह भूतलपर अवतार लेनेक सम्मुच हुआ तब इसी भरतक्षेत्र में यंग बंगाल देश मी मिथिला नगरी में इक्ष्वाकु वंशीय महाराज श्री विजय राज्य करते थे जो अपने समय के अद्वितीय शूर विर थे । उनकी देवियोंने मन बचन कार्य से उस की सेवा की । उसने आश्विन कृष्णा द्वितीयो के दिन अश्विनी नक्षत्र में रात के पिछले भाग में हाथी आदि सोलह स्वप्न देखे । उसी समय उक्त अपराजित विमान में चढकर हाथी के आकार ही उसके गर्भ में प्रवेश किया सबेरा होते ही जब वप्पिला रानीने पतिदेव से स्वप्नोंका फल पूछा तब उन्होंने कहा कि आज तुम्हारी गर्भ में त्रिभुवन नायक तीर्थकर भगवान ने प्रवेश किया है । ये सोलह स्वप्न और यह रन्तों की अविरल वर्षा उन्होंका महात्म्य प्रकट कर रही है । सवेरा होते होते ही देवोंने आकर मिथिला पुरी की तीन प्रदक्षिणाएं दो और फिर राजभवनमें जाकर महाराज श्री विजय और वप्पिला देवी की खूब स्तुति की । तथा अनेक वस्त्राभूषण देकर उन्हें प्रमुदित किया ।

गर्भकाल के नौ माह बीत जानेपर रानी वप्पिलाने आषाढ कृष्णा दशमी के दिन स्वाती नक्षत्र में तेजस्वी बालक को उत्पन्न किया । उसके दिव्य तेजसे समस्त प्रसूति गृह जगमगा उठा था । उसी समय देवोंने आकर उसके जन्म कल्याणक का उत्सव मनाया और नेमिनाथ नाम से सम्बोधित किया । महाराज श्री विजयने भी पुत्र रत्न की उत्पत्ति के उपलक्ष में करोडो रुपयों का मन्दिर में भगवान नामिनाथ को उचित रुपसे पालन होने लगा ।

क्रम-क्रम से जब वे तरुण अवस्था को प्राप्त हुए तब महाराज श्री विजय ने उनका योगय कुलीन कन्याओं के साथ विवाह सम्बन्ध कर दिया और उन्हे युवराज पदपर नियुक्त किया भगवान मुनि सुब्रतनाथ के मोक्ष जानेसे साठ लाख वर्ष बीत जानेपर इनका अवतार हुआ था । इनकी आयु भी इसी में शामिल है । आयु दश हजार वर्ष बीत जानेपर इनका अवतार हुआ था । इनकी आयु भी इसी में शामिल है । आयु दश हजार वर्ष की थी शरीर पन्द्रह धनुष ऊंचा था और शरीर का रंग तपाये हुए सुवर्णकी तरह था । कुमार कालके पच्चीस सौ वर्ष जानेपर उन्हें राज्याभिषेक पूर्वक राज्य गद्दी देकर श्री विजय महाराज आत्म कल्याण की ओर अग्रसर हुए थे । भगवान नामिनाथने राज्य पाकर दृष्टोंका उच्छेद और साधुओंका अनुग्रह किया । बीच-बीच में देव लोग संगीत आदिकी गोष्ठियोंसे उनका मन प्रसन्न रखते थे । इस तरह सुख पूर्वक राज्य करते हुए उन्हें पांच हजार वर्ष बीत गये ।

एक दिन किसी बन में घुमते हुए भगवान नमिनाथ वर्षा ऋतु की शोभा देख रहे थे कि इतनें में आकाश में घूमते हुए दो देव उनके पास पहुंचे । जब भगवान ने उनसे आनेका कारण और परचिय पूछा तब वे कहने लगे नाथ इसी जम्बू द्वीप के विदेह क्षेत्र में एक वत्सकावती देश है उसके सुसीमा नगरमे अपराजित विमानसे आकर एक अपराजिम नामके तीर्थंकर हुए है । उनके केवलज्ञान की पूजा के लिये सब इन्द्रादिक देव आये थे । कल उनके समवसरण में किसी ने पूछा था कि इस समय भरतक्षेत्र में भी क्या कोई तीर्थकर है । तब स्वामी अपराजित ने कहा था कि इस समय भरतक्षेत्रा बंगाल प्रान्त की मिथिला नगरीमें नेनिनाथ स्वामी है जो कुछ समय बाद तीर्थंकर होकर दिव्य ध्वनिसे संसार का कल्याण करेंगे । वे अपराजित विमान से आकर वहां उत्पन्न हुए है । महाराज ! पहले हम दोनों धातकीखण्ड दीपक के रहने वाले थे पर अब तपश्चर्या के प्रभावसे सौधर्म स्वर्ग में देव हुए है दुसरे ही दिन हम लोग अपराजित केवलीकी बन्दनाके लिये गयी थे सो वहांपर आपका नाम सुनकर दर्यनोंकी अभिलाषा से यहां आये है ।

भगवान नामिनाथ देवोंकी बात सुनकर अपने नगरकी लाट तो आये पर उनके ह्रदय में संसार परिभ्रमण के दु:खने स्थान जमा लिया । उन्होंने सोचा कि वह जीव नाटक के नट की तरह कभी देवका, कभी मनुष्यका, कभी तियच्चका और कभी नारी का वय बदलता रहता है । अपने ही परिणामोंसे अच्छे बुरे कर्मोका बांधता है और उनके उदय में यहां वहां घूमकर जन्म लेकर दु:खी होता है । इस संसार परिभ्रमण का यदि कोई उपाय है तो दिगम्बर मुद्रा धारण करना ही है । यहां भगवान ऐसा विचार कर रहे थे, वहां लौकान्तिक देवोंके आसन कंपने लगे जिससे वे अवधिज्ञान से सब समाचार जानकर नमिनाथजी के पास आये और सारगर्भित शब्दों में उनकी स्तुति तथा उनके विचारों का समर्थन करने लगे । लौकान्तिकं देवोंके समर्थन से उनका वैराग्य और भी अधिक बढ गया । इसलिये उन्होंने सुप्रभ नामक पुत्राको राज्य दे दिया और आप उत्तर कुरु नामकी पालकी पर सवार होकर चित्रवन मे पहुंचे । वहां दो दिनके उपवास की प्रतिज्ञा लेकर आषाढ कृ ष्णा दशमीके दिन अश्विनी नक्षत्र में शाम के समय एक हजार राजाओं के साथ दीक्षीत हो गये । देव लोग तप:कल्याणक का उत्सव मनाकर अपने अपने स्थान पर चले गये । भगवान् नेमिनाथ को दीक्षा के समय ही मन:पर्यय ज्ञान तथा अनेक ऋध्दियां प्राप्त हो गई थी । वे तीसरे दिन आहार लेनेकी इच्छा से वीरपुर नगर में गये। वहांपर दत्त राजाने उन्हें विधि पूर्वक आहार दिया था । तदनन्तर उन्होंने छद्मस्थ अवस्था के नौ

वर्ष मौन पूर्वक व्यतीत किये । छद्मस्थ अवस्था में भी उन्होंने कई जगह विहार कि । नौ वर्ष के बाद वे उसी दीक्षावन-चित्रवन में आये और वहां मौलिश्री-नकुल वृक्ष के निचे दो दिनके उपवास की प्रतिज्ञा लेकर विराजमान हो गये । वहीं पर उन्हें मार्ग शीर्ष शुक्ला पौर्णमासी के दिन अश्विनी नक्षत्रमैं पुर्णज्ञान-केवलज्ञान प्राप्त हो गया । उसी समय इन्द्र आदि देवोंने आकर उनकी पूजा की । इन्द्रकी आज्ञा पाकर धनपतिने समवसरण की रचना की । उसके मध्यमें सिंहासन पर विराजमान होकर उन्होंने नौ वर्षके बाद मौन भंग किया । दिव्य ध्वनि के द्वारा सब पदार्थोंका व्याख्यान किया । लोगोंको अनेक सामयिक सुधार बतलाये । उनके प्रभाव, शील और उपदेश से प्रतिबुध्द होकर कितने ही भव्य जीवोंने मुनि-आर्यिका, श्रावक और श्राविकाओंके ब्रत धारण किये थे । इन्द्र की प्रार्थना सुनकर उन्होंने प्राय: समस्त आर्य क्षेत्रोंमे बिहार किया और सत्य धर्मका ठोस प्रचार किया ।

उनके समवसरण में सुप्रभार्य आदि सत्राह गणधर थे, चार सौ पचास, ग्यारह अंग चौदह पूर्व के जानकर थे, बारह हजार छह सौ शिक्षक थे, एक हजार छ:सौ अवधिज्ञानी थे, इतने ही केवलज्ञानी थे, पन्द्रह सौ विक्रिया ऋध्दि के धारक थे, बारह सौ पचास मन:पर्यय ज्ञानी थे, और एक हजार वादी शास्त्रार्थ करने वाले थे । इस तरह कुल मिलाकर बीस हजार मुनिराज थे । मंगिनी आदि पैतालीस हजार आर्यिकायें थी, असंख्यात देव-देवियां और असंख्यात तिर्थच थे । भगवान नामिनाथ इन सबके साथ बिहार करते थे ।

निरन्तर बिहार करते-करते जब उनकी आयु केवल एक माह बाकी रह गई तब वे बिहार और उपदेश बन्दकर सम्मेद शिखर पर जा पहुंचे और वही पर एक हजार राजाओंके साथ प्रतिमा योग धारकर विराजमान हो गये । वहीं पर उन्होंने वैशाख कृष्ण चतुर्दशीके दिन प्रात: कालके समय अश्विनी नक्षत्र में शुल्क ध्यान रुप वन्हिके द्वारा समस्त अघातिया कर्मो की जलाकर आत्म स्वातंत्र्य-मोक्ष लाभ किया । उसी समय देवोंने आकर सिध्द क्षेत्र की पूजा की और निर्वाण कल्याणक का उत्सव किया ।

भगवान नेमिनाथ

धनाक्षरी छन्द

शोभिते प्रियंग अंग देखे दुख होय भंग, लाजत अनंग जैसे दीप भानु भास तैं ।

बाल ब्रम्हचारी उग्रसेनकी कु मारी जादों, नाथ तैं किनारो कर्म कादो दु:ख रास तैं ।।

भीम भव काननमें आनन सहाय स्वामी, अहो नेमि नामी तक आयो तुम्हें तासतैं ।

जैसे कृपा कन्द बन जीवनको बन्द छोडि त्योंहि दासको खलास कीजैभव फांसतैं ।।

(१) पूर्वभव वर्णन

जम्बू द्वीप के पश्चिम विदेह क्षेत्र में सीतोदा नही के उत्ता किनारे पर एक सुगन्धिल नामका देश है । उसके सिहपुर नगरमें किसी समय अर्हद्दास नामका राजा राज्य करता था । उसकी स्त्री का नाम जिनदत्ता था । दोनों दम्पति साधु स्वभावी और आसन्न भव्य जीव थे । वे अपना धर्ममय जीवन बिताते थे ।

किसी समय महारानी जिनदत्ता ने अष्टान्हिका के दिनों में सिध्दयंत्र की पूजा की और उससे आशा की कि हमारे कोई उत्तम पुत्रा हो । ऐसी आशा कर वह प्रसन्नचित्त हो रातमें रातमें सुखपूर्वक सो गई । सोते समय उसने सिंह, हाथी, सुर्य, चन्द्रमा और लक्ष्मीका अभिषेक ऐसे पांच शुभ स्वप्न देखे । उसी समय उसके गर्भ में स्वर्ग से आकर किसी पुण्यात्मा जीवने प्रवेश किया । नौ माह बीत जानेपर उसने एक महा पुण्यात्मा पुत्र उत्पन्न किया । उसके उत्पन्न होते ही शुभ शकुन हुए थे । वह खेल कूद में भी अपने भाईयोंके द्वारा जीता नहीं जाता था । इसलिये राजाने उसका अपराजित नाम रक्खा था। अपराजित दिन दूना और रात चौगुना बढने लगा । धीरे धीरे उसने युवावस्था में प्रवेश किया, जिससे उसके शरीर की शोभा कामदेवसे भी बढकर हो गई थी । योग्य अवस्था देखकर राजा अर्हद्दास ने उसका कुलीन कन्याओं के साथ विवाहबन्धन कर दिया और कुछ समय बाद उसे युवराज भी बना दिया ।

किसी एक दिन बनमालीने राजा अर्हद्दासके वन में विमलवाहन नामक तीर्थंकर के आने का समाचार कहा । जिससे राजा प्रसन्नचित्त हो समस्त परिवार के साथ उनकी बन्दनाके लिये गया । वहां उसने तीन प्रदक्षिणायें देकर उन्हें भक्तिपूर्वक नमस्कार किया और मनुष्योचित स्थानपर बैठकर धर्मका स्वरुप सुना । तीर्थंकर देव के उपदेश से विषय-विरक्त होकर उसने युवराज अपराजित के लिये राज्य दे दिया और आप उन्ही विमलवाहन मुनिराज के पास दीक्षीत हो गया । कुमार अपराजितने भी सम्यग्दर्शन और अणुव्रत धारणकर राजधानी में प्रवेश किया । वहां

वह राज्य की समस्त व्यवस्था सचिवों के आधीन छोडकर धर्म और काम के सेवन में लग गया । एक दिन उसने सुना कि पूज्य पिताजी के साथ साथ श्री विमलवाहन गन्धमादन पर्वतसे मुक्त हो गये है यह सुनकर उसने प्रतिज्ञा की कि मैं तीर्थकर के बिना दर्शन किये भोजन नहीं करुंगा । इस तरह बिना भोजन किये उस को आठ दिन हो गये तब इन्द्रकी आज्ञा पाकर यक्षपतिने अपनी मायासे विमलवाहन तीर्थकर का साक्षात् स्वरुप बनाकर दिखलाया । अपराजित समवसरण में बन्दनाकर उन की पूजा की और फिर भोजन किया ।

किसी एक दिन राजा अपराजित फाल्गूण मासकी अष्टान्हिाओंके दिनोंमें जिनेन्द्रदेव की पूजा कर जिन मन्दिरमें बैठा हुआ धर्मोपदेश कर रहा था । इतनेमें वहां चारण ऋध्दिधारी दो मुनिराज आये । राजाने खडे होकर दोनों मुनिराजोंका स्वागत किया और भक्तिपूर्वक नमस्कार कर उन्हें योग्य आसन पर बैठाया । कुछ देर तक धर्म-चर्चा होने के बाद राजाने मुनिराज से कहा कि महाराज मैने कभी आपको देखा है । यह सुनकर बडे मुनिराज बोले-ठीक, आपने मुझे अवश्य देखा है पर कहां ? यह आप नहीं जानते इसलिये मैं कहता हूं सुनिये पुष्करार्ध द्वीप के पश्चिम मेरु की ओर पश्चिम क्षेत्रमें जो गन्धिल नामका देश है उसके विजयार्ध पर्वत की उत्तर श्रेणीमें एक सूर्यप्रभ नामका नगर है । उसमें किसी समय सूर्यप्रभ नाम का राजा राज्य करता था । उसकी महारानी का नाम धरिणी था । उनमें चिन्तागति बडा मनोगति मझला और चपलगति , छोटा पुत्र था । राजा सुर्यप्रभ अपने बुध्दिमान पुत्र और पतिब्रता धारिण के साथ सुखसे जीवन बिताता था ।

उसी गन्धिल देश की उत्तर श्रेणी में उरिंदम नगर के राजा अरिंजय ओर रानी अजितसेना के एक प्रीतिमती नामकी पुत्री थी । प्रीत्रीमती बहुत ही बुध्दिमती लडकी थी । जब वह जवान हुई और उसके विवाह होने का समय आया तब उसने प्रतिज्ञा कर ली कि जो राजकुमार मुझे शीघ्र गमन में जीत लेगा मैं उसीके साथ विवाह करुंगी किसी दुसरे के साथ नहीं । यह प्रतिज्ञा लेकर उसने मेरु पर्वत की प्रदक्षिणा देनेंमें एक चिन्तागति को छोडकर समस्त विद्याधर राजकुमारोंको जीत लिया । जब प्रीतिमती बिजयी चिन्तागतिके गले में बरमाला डालने के लिये गई तब उसने कहा कि इस माला से तुम मेरे छोटे भाई चपलगति को स्वीकार करो । क्योंकि उसीके निमित्त से यह गति-युध्द किया था । चिन्तागति की बात सुनकर प्रीतिमतीने कहा कि मै चपलति से पराजित नहीं हुई हूं । मै तो अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार यह रत्नमाला आप के ही श्रीकंठ में डालना चाहती हूं । पर चिन्तागतिने उसका कहना

स्वीकार नहीं किया । इसलिये वह विरक्त होकर किसी निवृता नाम की आर्यिकाके पास दीक्षित हो गई । प्रीतिमतीका साहस देखकर चिन्तागति, मनोगति और चपलगतिभी दमबर मुनिराज के पास दीक्षित हो गये ।और कठिन तपश्चरण कर आयु के अन्त में माहेन्द्र स्वर्ग में सामानिक देव हुये । वहां उन्होंने महा मनोहर भोग भोगते हुए सुख से सात सागर व्यतीत किये । आयुके अन्त में वहांसे च्युत होकर दोनों छोटे भाई मनोगति और चपलगति, जम्बू द्वीप के विदेह क्षेत्र में पुष्कलावती देश के विजयार्ध पर्वत की उत्तर श्रेणी में गगनवल्लभ नगर के राजा गगनचन्द्र और रानी गगनसुन्दरी के हम अमितगति और अमिततेज नाम के पुत्र हुए है ।